वहां उस की आयु सात सागर प्रमाण थी। आयु अन्त होनेपर वहांसे च्युत होकर वह उसी राजगृह नगर में विश्वभूति राजा की जैनी नामक महारानी से विश्वनन्दी नाम का पुत्र हुआ। जो कि बडा होने पर बहुत ही शूरवीर निकला था। राजा विश्वभूति के छोटे भाई का नाम विशाखभूति था । उसकी भी लक्ष्मणा स्त्री से विशाखनन्द नाम का पुत्र हुआ थाजो अधिक बुध्दिमान नहीं था। इस परिवार के सब लोग जैन धर्ममें बहुत रुचि रखते थे । मरीचिका जीव विश्वनन्दी भी जैन धर्ममें आस्था रखता था । किसी एक दिन राजा विश्वभूति शरदऋतु के भंगुर (नाश शील) बादल देखकर मुनि हो गये और अपना राज्य छोटे भाई विशखभूति के लिये दे गये तथा अपने पुत्र विश्वनन्दी को युवराज बना गये।

किसी एक दिन युवराज विश्व नन्दी अपने मित्रों के साथ राजोद्यान में क्रीडा कर रहा था कि इतने में वहां से नये राजा विशाखाभूति का पुत्र विशाखनन्द निकला। राजोद्यान की शोभा देखकर उसका जी ललचा गया। उसने झट से अपने पितासे कहा कि अपने जो बन विश्वनन्दी को दे रक्खा है वह मुझे दीजिये नहीं तो मै घर छोडकर परदेश को भाग जाऊंगा। राजा विशाखभूति भी पूत्रके मोह में आकर बोला-बेटा। यह कौन बडी बात है? मै अभी तुम्हारे लिये वह उद्यान दिये देता हूं - ऐसा कहकर उसने युवराज विश्वनन्दीको अपने पास बुलाकर कहा कि-मुझे कुछ आततायियों को रोकने के लिये पर्वतीय प्रदेशोंमें जाना है । सो जबतक मैं लौट कर वापिस न आ जाऊं तबतक राज्य कार्यो की देखभाल करना । काका के बचन सुनकर भोले विश्वनन्दी ने कहा-नहीं आप यही पर सुखसे रहिये नही, आप यहींपर सुखसे रहिये, मै पर्वतीय प्रदेश में जाकर उपद्रवियोंको नष्ट किये आता हूँ राजाने विश्वनन्दी को कुछ सेनोके साथ मैं पर्वतीय प्रदेशों में भेज दिया और उसके अभाव में उसका बगीचा अपने पुत्र के लिये दे दिया । जब विश्वनन्दी को राजा के इस कपट का पता चला तब वह बीच से ही लौट कर वापस चला आया और विशाखनन्द को मारने के लिये उद्योग करने लगा । विशाखनन्द भी उसके भयसे भागकर एक कैथके पेडपर चढ गया परन्तु कुमार विश्वनन्दीने उसे मारने के लिये वह कैथ का पेड ही उखाड डाला। तदनन्तर वह भागकर एक पत्थर के खम्भे में जा छिपा परन्तु विश्वनन्दी ने अपनी कलाई चौट से उस खम्बे को भी तोड डाला । जिससे वह वहां से भागा । उसे भागता हुआ देखकर युवराज विश्वनन्दी क ो दया आ गई । उसने कहा घ्भाई ! मत भागो, तुम खुशी से मेरे बगीचमें क्रीडा करो, अब

मुझे उसकी आवश्यकता नही है । अब मुझे जंगलके सूखे कटीले झंखाड झालाड ही अच्छे लगेंगेङ ....ऐसा कहकर उसने संसार की कपट भरी अवस्था का विचार करके किन्हीं सम्भूत नाम के मुनिराज के पास जिन दीक्षा ले ली। इस घट ना से राजा विशाखाभूति को भी बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसने मन में सोचा कि मैंने व्यर्थ ही पुत्र के मोह में आकर साधु-स्वभावी विश्व नन्दी के साथ कपट किया है । सच पूछो तो यह राज्य भी उसीका है । सिर्फ स्नेह के कारण ही बडे भाई मुझे राजा बना गये है। अब जिस किसी भी तरह मुझे इस पाप का प्रायश्चित करना चाहिये । ऐसा सोचकर उसने भी विशाखनन्दी को राज्य देकर जिन दीक्षा ले ली । यह हम पहले लिख आये है कि विशाच नन्दी बुध्दिमान् नहीं था । इसलिये वह राज्यसत्ता पाकर मदोन्मत्त हो गया । कई तरहके दुराचार करने लगा । जिससे प्रजा के लोगोंने उसे राजगद्दीसे च्युतकर देश से निकाल दिया । विशाखनन्दी ने राज्य से च्युत होकर आजीविका के लिये किसी राजाके यहां नौकरी कर ली । किसी समय वह राजाके कार्यसे मथुरा नगरीमें आया था और वहां एक वेश्या के घर की छतपर बैठा हुआ था।

मुनिराज विश्व नन्दी भी कठिन तपस्याओंसे अपने शरीर को सुखाते हुए उस समय मथुरा नगरी में पहुंचे और आहार की इच्छासे मथुरा की गलियों में घुमते हुए वहां से निकले जहांपर वेश्या के मकान की छतपर विशाखा नन्दी बैठा हुआ था। असाताका उदय किसी को नहीं छोडता । मुनिराज विश्व नन्दी बैठा हुआ था । असाताका उदय किसी को नहीं छोडता । मुनिराज विश्व नन्दी को उस गली में एक नवप्रसूता गायने धक्का देकर जमीनपर गिरा दिया। उन्हें जमीनपर पडा हुआ देखकर विशाखानन्दीसे हंसते हुए कहा कि कलाईकी चोट से पत्थरके खम्भे को गिरा देनेवाला तुम्हारा वह बल आज कहां गया ? उसके बचन सुनकर विश्वनंदी को भी कुछ क्रोध आ गया उन्होंने लडखडाती हुई आवाज में कहा-घ्तुझे इस हंसी का फल अवश्य मिलेगाङ । आहार`लकर मुनिराज वन की ओर चले गये। वहां उन्होंने आयु के अन्तमें निदान बांधकर सन्यास पूर्वक शरीर छोडा जिससे वे महाशुक्र नाम के स्वर्ग में देव हुए । मुनिराज विशाखभूति आयु के अन्त में समता भावोंसे मरकर वहांपर देव हुए । वहां उन दोनों में बहुत ही स्नेह था।

सोलह सागरतक स्वर्गो के सुख भोगने बाद वहांसे च्युत होकर विशासभूति का जीव जम्बूद्वीप भरतक्षेत्र में सुरम्य देश के पोदनपुर नगरके स्वामी प्रजापती की जयावती रानी के विजय नामका पुत्र हुआ । पूर्वभवके संस्कारसे इन दोनोंमे बडा

भारी स्नेह था। बडे होनेपर विजय बलभद्र पदवीका धारक हुआ और त्रिपुष्ठ ने नारायण पदवी पाई । मुनि-निन्दा के पापसे विशाखनन्दी का जीव अनेक कुयोनियों में भ्रमण करता हुआ विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणीपर अलका नगरी के राजा मयूरग्रीवकी नीलाञ्जना रानी से अश्वग्रीव नामका पुत्र हुआ । वह बचपन से ही उद्दण्ड प्रकृतिका था। जिससे वह तीन खण्डपर अपना आधिपत्य जमाये हुए था। किसी कारणवश त्रिपृष्ठपर अपना चक्र चलाया । पर चक्ररत्न तीन प्रदक्षिणाएं देकर त्रिपुष्ठके हाथ में आ गया । तब उसने उसी चक्ररत्नके प्रहास से अश्वग्रीवको मार डाला और स्वयं त्रिपृष्ठ तीन खण्डों का राज्य करने लगा। तीन खण्डका राज्य पाकर भी और तरह तरह के भोग भोगते हुए भी असे कभी तृप्ति नहीं होती थी। वह हमेशा विषय सामग्री को एकत्रित करने में लगा रहता था । जिससे वह त्रिपृष्ठ मरकर सात वें नरक में नार की हुआ वहां वह तेतीस सागर पर्यन्त भयंकर दु:ख भोगता रहा। फिर वहां से निकलकर जम्बू द्वीप भरत-क्षेत्र में गंगा नदी के किनारे सिंहगिर पर्वत पर सिंह हुआ। वहां उसने अनके वन-जन्तुओं का नाशकर पाप उपार्जन किया जिनके फलसे वह वह पुन: पहले नरक में गया और वहां कठिन दु:ख भागता रहा। वहां से निकलकर जम्बू द्वीप में सिंहकूट के पूर्वकी ओर हिमवान् पर्वत मी शिखरपर फिर से सिंह हुआं वह एक समय अपनी पैनी डाढोसे एक मृग को मारकर खा रहा था। कि इतने में वहांसे अत्यन्त कृपालु चारण ऋध्दिधारी अजितंजय और अमितगुण नाम के मुनिराज निकले सिंह को देखते ही उन्हें तीर्थंकर के वचनों का स्मरण हो आया। वे किन्ही तीर्थंकर के समवसरण में सुनकर आये हुए थे कि हिमकूट पर्वत परका सिंह दशवें भवमें महावीर नाम का तीर्थंकर होगा। अजितंजय मुनिराज ने अवधिज्ञान के द्वारा उसे झट से पहचान लिया । उक्त दोनों मुनिराज आकाश से उतरकर सिंहके सामने एक शिलापर बैठे गये । सिंह भी चुपचाप वही पर बैठा रहा। कुछ देर बाद अजितंजय मुनिराजने उस सिंहको सारगर्भित शब्दों में समझाया कि अय मृगराज ! तुम इस तरह प्रतिदीन निबल प्राणियोंको क्यों मारा करते हो ? इस पापके फल से ही तुमने अनेक बार कुयोनियोंमे दु:ख उठाये है । इत्यादि कहते हुए उन्होंने उसके पहले के समस्त भव कह सुनाये। मुनिराज के बचन सुनकर सिंह को भी जातिस्मरण हो गय जिससे उसकी आंखो के सामने पहले के समस्त भव प्रत्यक्ष की तरह झलक ने लगे । उसे अपने दुष्कार्यो पर इतना अधिक पश्चाताप हुआ कि उसकी आंखोंसे आंसुओंकी धारा बह निकली। मुनिराज ने फिर उसे शान्त करते हुए कहा कि तुम आजसे

अहिंसा ब्रत का पालन करो । तुम इस भव से देशवें भव में जगत्पूज्य बर्ध्दमान तीर्थंकर होगे मुनिराज के उपदेश से बनराज सिंहने सन्यास धारण किया और विशुध्दचित्त होकर आत्म-ध्यान कियां जिससे वह मरकर सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नाम का देव हुआ। मुनियुगल भी अपना कर्तवय पूराकर आकाश मार्ग से बिहार कर गये। सिंहकेतु दो सागर तक स्वर्गके सुख भोगने के बाद धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व मेरुसे पूर्वकी ओर विदेह क्षेत्रमें मंगलावती देश के विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें कनकप्रभ नगर के राजा कनकपुंख्य ओर उनकी महारानी कनकमाला के कन को ज्वल नामका पुत्र हुआ । बडे होनेपर उसकी राजकुमारी कनकवती के साथ शादी हुई। एक दिन वह अपनी स्त्री के साथ मुंदराचल पर्वतपर क्रीडा करने के लिये गया था । वहां पर उसे प्रियमित्र नाम के अवधिज्ञानी मुनिराज मिले। कनकोज्वलने प्रदक्षिणा देकर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और फिर धर्मका स्वरुप पूछा । उत्तरमें प्रिय मित्र महाराज ने कहा कि-

धर्मो दयामयो धर्म श्रयधर्मेण नायसे, भुक्तिर्धर्मेण कर्माणि हन्ता धर्माय सन्मतिम् ।

देहिभापेहि धर्मात्व याहि धर्मस्यभृत्यताम्, धर्मेतिष्ठ चिरंधर्म पाहिमामिति चिंतय ।।

अर्थात्-धर्म दयामय है, तुम धर्मका आश्रय करो, धर्मसे ही मुक्ति प्राप्त होती है, धर्मके लिये उत्तम बुध्दि लगाओं, धर्मसे विमुक्त मत होवो, धर्मके भृत्य (दास) बन जाओ, धर्ममें लीन रहो और हे धर्म ! हमेशा मेरी रक्षा करो ..... इस तरह चिन्तवन करो ।

मुनिराज के वचन सुनकर उसके ह्रदयमें वैराग्य रस समा गया। जिससे उसने कुछ समय बाद ही जिनदीक्षा लेकर सब परिग्रहोंका परित्याग कर दिया। उन्तमें वह सन्यास पूर्वक शरीर छोडकर सातवे कल्प स्वर्ग में देव हुआ । लगातार तेरह सागर तक स्वर्ग के सुख भोगकर वह वहांसे च्युत हुआ ओर जम्बू द्वीप भरत क्षेत्र के कौशल देश में साकेत नगर के स्वामी राजा बज्रसेनकी रानी शीलवतीके हरिषेण नाम का पुत्र हुआ । हरिषेण ने अपने बाहुबल से विशाल राजलक्ष्मी का उपभोग किया था ओर अन्त समय में उस विशाल राज्य को जीर्ण तृणके समान छोडकर श्रुतसागर मुनिराज के पास जिनदीक्षा ले ली तथा उग्र तपस्यांए की । आयु के अन्त में स्वर्ग बसुन्धरासे सम्बन्ध तोडकर वह धातकी खण्ड के पूर्व मेरुसे पूर्व की ओर विदेहक्षेत्र के पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरीमें वहां के राजा सुमित्र और उनकी

सुब्रता रानी से प्रियमित्र नामक पुत्रा हुआ। सुमित्र चक्रवर्ती था- उसने अपने पुरुषार्थ से छह खण्डोंको वश में कर लिया था। किसी समय उसने क्षेमंकर जिनेन्द्र के मुखसे संसार का स्वरुप सुना और विषय वासनाओंसे विरक्त होकर जिनदीक्षा धारण कर ली। अन्त में समाधिपूर्वक मरकर बारहवे सहस्त्रार स्वर्गमें सुर्यप्रभू देव हुआ । वहां वह अठारह सागर तक यथेष्ट सुख भोगता रहा । फिर आयुके अन्त में वहां से च्युत होकर जम्बूद्वीपके क्षेत्रापुर नगर में राज नन्दवर्ध्दन की रानी वीरवतीसे नन्द नाम का पुत्र हुआ। वह बचपन से ही धर्मात्मा और न्यायप्रिय था। कुछ समय तक राज्य भोगने के बाद उसने किन्ही प्रोष्टिल नामक मुनिराज के पास ओर दर्शन विशुध्दि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थकर नामक महापुण्य प्रकृतिका बन्ध किया । फिर आयुके अन्तमें आराधना पूर्वक शरीर त्यागकर सोलहवें अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर विमान में इन्द्र हुआ । वहां पर उसकी बाइस सागर प्रमाण आयु थी। तीन हाथ का शरीर था, शुक्ल लेश्या थी । वह बाईस हजार वर्ष में एक बार मानसिक आहार ग्रहण करता और बाईस पक्ष के बाद एक बार श्वासोच्छ्वास लेता था । पाठकोंको यह जानकर हर्ष होगा कि यही इन्द्र आगे चलकर वर्ध्दमान तीर्थकर होगा-भगवान् महावीर होगा। कहां और कब ?

सुनिये -

(२) वर्तमान परिचय

भगवान् पार्श्वनाथ के मोक्ष चले जानेके कुछ समय बाद यहां भारतवर्ष में अनेक मत-मतान्तर प्रचलित हो गये थे । उस समय कितने ही मनुष्य स्वर्ग प्राप्ति के लोभ से जीवित पशुओं को यज्ञ की बलि - वेदियों में होम देते थे। कितने ही बौध्द धर्मकी क्षणिक वादिता को अपनाकर दुखी हो रहे थे । और कितने ही लोग सांख्य नैयायिक तथा वेदान्तियोंके प्रपंचमें पडकर आत्महित से कोसों दूर भाग रहे थे उस समय लोगोके दिलों पर धर्म का भूत बुरी तरहसे चढा हुआ था । जिसे भी देखो वही हर एक व्यक्तिको अपनी ओर-अपने धर्मकी ओर खीचने की कोशीश करता हुआ नजर आता था । उद्दण्ड धर्माचार्य धर्मकी ओट में अपना स्वार्थ गांठते थे । मिथ्यात्व यामिनि का घना तिमिर सब ओर फैला हुआ था। उसमें दुष्ट उलूक भयंकर घूत्कार करते हुए इधर उधर घूमते थे। आततायिओंके घोर आतंकसे यह धरा अकुला उठी थी। रात्रिके उस सघन तिमिर से व्याकुल होकर प्राय: सभी सुन्दर प्रभात का दर्शन करना चाहते थै । उस समय सभीकी दृष्टि प्राचीकी ओर लग रही

थी। वे सतृष्ण लोचनोंसे पूर्व की ओर देखते थे कि प्रात:कालकी ललित -लालिमा आकाशमें कब फैलती है ।

एकने ठीक कहा है - सृष्टि का क्रम जानता की आवश्यकतानुसार हुआ करता है। जब मनुष्य ग्रीष्म की तप्त लूसे व्याकूल हो उठते है तब सुन्दर श्यामल बादलों से आकाश को आवृत कर पावस ऋतु आती है । वह शीतल और स्वादु सलिल की वर्षाकर जनता का सन्ताप दूर कर देती है । पर जब मेघोंकी घनघोर वर्षा, निरन्तर के दुर्दिन बिजलीकी कडक मेघोंकी गडगडाह्ट और मलिन पंकसे मन म्लान हो जाता है तब स्वर्गीय अप्सरा का रुप धारण कर शरद् ऋतु आती है । वह प्रतिदिन सवेरेके समय बालदिनेश की सुनहली किरणों से लोगों के अन्तस्तल को अनुरंजित बना देती है । रजनीमें चन्द्रमा की रजतमयी शीतल किरणोंसे अमृत वर्षाती है । पर जब उसमें भी लोगोंका मन नहीं लगता तब हेमन्त, शिशिर, और वसन्त वगैरह आ-आकर लोगोंकोआनन्दित करनेकी चेष्टाएं करती है । रात के बाद दिन और दिन के बाद रातका आगमन भी लोगों के सुभीते के लिए है। दुष्टोंका दमन करने के लिये महात्माओंकी उत्पत्ति अनादिसे सिध्द है । इसलिये भगवान् पार्श्वनाथ के बाद जब भारी आतंक फैल गया था। तब किसी महात्मा की आवश्यकता थी । बस, उसी आवश्यकता को पूर्ण करनेके लिये हमारे कथानायक भगवान महावीरने भारत बसुधा पर अवतार लिया था ।

जम्बू द्वीप-भरतक्षेत्र के मगध(बिहार) देशमें एक कुण्डलपुर नामक नगर था। जो उस समय वाणिज्य व्यवसाय के द्वारा खूब तरक्की पर था। उसमें अच्छे सेठ लोग रहा करते थे। कुण्डलपुर का शासन-सूत्र महाराज सिध्दार्थके हाथ में था । सिध्दार्थ शूरबीर होने के साथ बहुत ही गम्भीर प्रकृतिके पुरुष थै । लोग उनकी दयालुता देख कर कहते थे। कि ये एक चलते फिरते दयाके समुद्र है। उनकी मुख्य स्त्रीका नाम प्रियकारिणी(त्रिशला) था। यह त्रिशला सिन्धु देशकी वैशालीपुरी के राजा चेटक की पुत्री थी, बडी ही रुपवती और बुध्दिमती थी। वह हमेशा परोपकार में ही अपना समय बिताती थी। रानी होनेपर भी उसे अभियान तो छू भी नहीं गया था। वह सच्ची पतिव्रता थी। सेवा से महाराज सिध्दार्थ को हमेशा सन्तुष्ट रखती थी । वह घर के नौकर चाकरों पर प्रेमका व्यवहार करती थी। और विघ्न-व्याधि उपस्थित होने पर उनकी हमेशा हिफाजत भी रखती थी ।

राजा सिध्दार्थ नाथ वंशके शिरोमणि थे। वे भी अपनेका त्रिशला की संगति से पवित्र मानते थे । राज चेटके के त्रिशला के सिवाय मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती

चेलिनी ज्येष्ठा और चन्दना ये छह पुत्रियां और थी। मृगावतीका विवाह वत्सदेश की कौशाम्बी नगरीके चन्द्रवंशीय राजा शतानीक के साथ हुआ था। सुप्रभा, दशर्ण देशके हरकच्छ नगर के स्वामी सूर्यवंशी राजा दशरथ की पट्ट रानी हुई थी। प्रभावतीका विवाह-सम्बन्ध कच्छ देशके रोरुक नगर के स्वामी राजा उदयन के साथ हुआ था।

प्रभावती का दूसरा नाम शीलवती भी प्रचलित था। चेलना मगध देश क राजगृह नगर के राजा श्रेणिक की प्रिय पत्नी हुई थी। ज्येष्ठा और चन्दना इन दो पुत्रियोंने संसार से विरक्त होकर आर्यिकाये ब्रत ले लिये थे ।

इस तरह महाराज सिध्दार्थ का बहुत से प्रतिष्ठित राजवंशो के साथ मैत्री-भाव था। सिध्दार्थ ने अपनी शासन-प्रणालीमें बहुत कुछ सुधार किया था ।

ऊपर जिस इन्द्र का कथन कर आये है वहां(अच्युत स्वर्ग में) जब उसकी आयु छह माह की बाकी रह गई। अनेक देवियां आ-आकर प्रियकारिणीकी सेवा करने लगी। इन सब कारणों से महाराज सिध्दार्थ को निश्चय हो गया था। कि अब हमारे नाथ वंश में कोई प्रभावशाली महापुरुष पैदा होगा।

आषाढ शुक्ल षष्ठी के दिन उत्तराषाढ नक्षत्र कें रात्रि के पिछले पहर में त्रिशला ने सोलह स्वप्न देखे और स्वप्न देखने के बाद मुंह में प्रवेश करते हुए एक हाथीको देखा । उसी समय उस इन्द्रने अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर विमान से मोह छोडकर उसके गर्भमें प्रवेश किया। सबेरा होते ही रानीने स्नान कर पतिदेव सिध्दार्थ महाराज से स्वप्नोंका पुत्र उत्पन्न होगा। जो कि सारे संसारका कल्याण करेगा लोगोंको सच्चे रास्ते पर लगावेगा । पति के बचन सुनकर त्रिशला मारे हर्षके अंगमे फू ली न समाती थी। उसी समय चारो निकाय के दवोंने आकर भावी भगवान् महावीरके गर्भावतरणका उत्सव किया तथा उनके माता-पिता त्रिशला और सिध्दार्थ का खूब सत्कार किया ।

गर्भकाल में नौ माह पूर्ण होनेपर चैत्रशुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में सबेरेके समय त्रिशला के गर्भ से भगवान् वर्ध्दमान मा जन्म हुआ। उस समय अनेक शुभ शकुन हुए थे । उनकी उत्पत्ति से देव, दानव, मृग ओर मानव सभी को हर्ष हुआ था। चारो निकायके देवोंने आकर जन्मोत्सव मनाया था। उस समय कुण्डलपूर अपनी सजावट से स्वर्ग को भी पराजित कर रहा था। देवराज ने इनका वर्ध्दमान नाम रक्खा था। जन्मोत्सव की विधि समाप्तकर देव लोग अपने स्थानोंपर चले गये । राजपरिवारमें बालक वर्ध्दमानका बहुत प्यारसे लालन -पालन होने लगा।

वे द्वितीया के इन्दु की तरह दिन प्रति दिन बढकर कुमार अवस्थामें प्रविष्ट हुए। कुमार वर्धमान को जो भी देखता था उसीकी आंखे हर्षके आंसुओं से तर हो जाती थी, मन अमन्द आनन्द से गद्‌गद् हो उठता था और शरीर रोमांचित हो जाता था। इन्हें अल्पकाल में ही समस्त विद्याएं प्राप्त हो गई थी। बालक वर्धमान के अगाध पाण्डित्यको देखकर अच्छे-अच्छे विद्वानोंको दांतो तले उंगुलियां दबानी पडती थी । विद्वान होनेके साथ साथ वे शूर, वीरता और साहस आदि गुणोंके अन्यय आश्रय थे।

किसी एक दिन सौधर्म इन्द्र की सभा में चर्चा चल रही थीकि इस समय भरतवर्ष में वर्धमान कुमार ही सबसे बलवान, शूरवीर और साहसी है इस चर्चा क ो सुनकर एक संगम नामक । कौतुकी देव कुण्डलपुर आया। उस समय वर्धमान कुमार इष्ट-मित्रों के साथ एक वृक्षपर चढने उतरने का खेल खेल रहे थे। मोका देखकर संगम देवने एक भयंकर सर्पका रुप धारण किया और फुंकार करता हुआ वृक्ष की जडसे लेकर स्कन्ध कर लिष्ट गया। नागराजकी भयावनी सूरत देखकर वर्धमान कुमार के सब साथी वृक्ष से कूद-कूदकर घर भाग गये पर उन्होंने अपना धैर्य नहीं छोडा । वे उसके विशाल फणपर पांव देकर खडे हो गये ओर आनन्द से उछलने लगे । उनके साहससे प्रसन्न होकर देव, सर्प का रुप छोडकर अपने असली रुप में प्रकट हुआ। उसने उनकी खूब स्तुति की और महावीर नाख रक्खा।

भगवान् महावीर जन्म से ही परोपकार में लगे रहते थे । जब वे दीन-दु:खी जीवों को देखते थे तब उनका हृदय रो पडता था। इतना ही नही, जबतक उनके दु:ख दूर करने का शक्तिभर प्रयन्त न कर लेते तबतक चैन नहीं लेते थे । वे अनेक असहाय बालकों की रक्षा करते थे। पुत्र की तर विधवा स्त्रियों की सुरक्षा रखते थे। उनकी दृष्टि के सामने छोटे-बडेका भेद-भाव न था। वे अपने हृदय का प्रेम आम बाजारमें लुटाते थे। जिसे आवश्यकता हो वह लूट कर ले जावे।

वर्धमान कुमार की किर्ती -गाथाओंसे समस्त भारतवर्ष मुखरित हो गया था। पहाडो की चोटियों और नद, नदी, निर्झरोंके किनारोंपर सुन्दर लता गृहोंमें बैठकर सौभाग्यवती स्त्रियां बडी ही भक्ति से उनका यशोगान करती थी।

श्री पार्श्वनाथ स्वामी के मोक्ष जाने के ढाई सौ वर्ष बाद भगवान महावीर हुए थे। इनकी आयु भी इसीमें शामिल है । इनकी आयु कुछ कम बहत्तर वर्षकी थी। शरीर की ऊं चाई सात हाथ की थी। और रंग सुवर्ण के समान स्निग्ध वर्णका था।

जब धीरे २ उनकी आयु के तीस वर्ष बीत गये और उनके शरीर में यौवन का पूर्ण विकास हो गया। तब एक दिन महाराज सिध्दार्थ ने उनसे कहा -प्रिय पुत्र ! अब तुम पूर्ण युवा हो, तुम्हारी गम्भीर ओर विशाल आंखे, उन्नत ललाट, प्रशान्त वदन, मन्द मुसकान, चतुर वचन, विस्तृत वक्षस्थल ओर घुटनों तक लम्बी भुजाएं तुम्हे महापुरुष बतला रही है। अब खोजने पर भी तुमने वहां चंचलता नहीं पाता हूं। अब तुम्हारा यह समय राज्य कार्य संभालने का है । मै एक बूढा आदमी ओर कितने दिन तक तुम्हारा साथ दूंगा? मै तुम्हारी शादी करके दुनिया की झंझटों से बचना चाहता हूं।..... पिता के वचन सुनकर महावीर का प्रफुल्ल मुखमण्डल एकदम गम्भीर हो गया। मानों वे किसी गहरी समस्या के सुलझाने में लग गये हो । कुछ देर बाद उन्होंने कहा- पिता जी ! यह मुझसे नहीं होगा। भला, जिस जंजाल से आप बचना चाहते है उसी जंजाल में आप मुझे क्योंकर फंसाना चाहते है ? ओह ! मेरी आयु सिर्फ बहत्तर वर्षकी है जिसमें आज तीस वर्ष व्यतीत हो चुके। अब इतनेसे अवशिष्ट जीवनमें मुझे बहुत कुछ कार्य करना बाकी है । देखिये पिताजी ! लोग धर्मके नाम पर आपसमें किस तरह झगडते है। सभी एक दूसरे को अपनी ओर खीचना चाहते है। पर खोज करने पर ये सब है पोचे। धर्माचार्य प्रपंच फैलाकर धर्म की दूकान सजाते है जिन में भोले प्राणी ठगाये जाते है। मैं इन पथ-भ्रान्त पुरुषोंको सुखका सच्चा रास्ता बतलाऊंगा क्या बुरा है मेरा बिचार ?

सिध्दार्थ ने बीच में ही टोक कर कहा -पर ये तो घर में रहते हुए भी हो सकते है। कुछ आगे बढकर महावीर ने उत्तर दिया-नही महाराज ! यह आपका सिर्फ व्यर्थ मोह है, थोडी देर के लिये आप यह भूल जाइये कि महावीर मेरा बेटा है फिर देखिये आपकी यह विचार-धारा परिवर्तित हो जाती है या नहीं ? बस पिताजी ! मुझे आज्ञा दीजिये जिससे मैं जंगल के प्रशान्त वायु मण्डल में रहकर आत्म-ज्योतिको प्राप्त करुं ओर जगत का कल्याण करुं । कुछ प्रारम्भ किया ओर कु छ हुआ। सोचते हुए सिध्दार्थ महाराज विषण्ण-वदन हो चुप रह गये।

जब पिता पुत्र का ऊपर लिख हुआ सम्बाद त्रिशला कानों में पडा तब वह पुत्र-मोह से व्याकुल हो उठी-उसके पांव के नीचे की जमीन खिसकने सी लगी । आंखों के सामने अंधेरा छा गया। वह मूर्च्छित हुआ ही चाहती थी कि बुध्दिमान् वर्ध्दमान कुमार ने चतुराई भरे शब्दों में उनके सामने अपना समस्त कर्तव्य प्रकट कर दिया- अपने आदर्श और पवित्र विचार उसके सामने रख दिये एवं संसार की दूषित परिस्थिति से उसे परिचित करा दिया। तब उसने डबडबाती हुई आंखोंसे

भगवान् महावीर की ओर देखा । उस समय उसे उनके चेहरेपर परोपकार की दिव्य झलक दिखाई दी। उनकी लालसा-शून्य सरल मुखाकृतिने उनके समस्त विमोह को दूर कर दिया। महावीरको देखकर उसने अपने आपको बहुत कुछ धन्यवाद दियाऔर कुछ देर तक अनिमेष दृष्टि से उनकी ओर देखती रही । फिर कु छ देर बाद उसने स्पष्ट स्वर में कहा- दे देव ! जावो, खुशीसे जाओ, अपनी सेवासे संसार का कल्याण करो, अब मै आपको पहिचान सकी, आप मनुष्य नहीं-देव है । मैं आपके जन्मसे धन्य हुई । अब न आप मेरे पुत्र है और न मै आपकी मां । किन्तु आप एक आराध्य देव है और में हूं आपकी एक क्षूद सेविका। मेरा पुत्र-मोह बिलकुल दूर हो गया।

माताके उक्त वचनोंसे महावीर स्वामीके विरुध्द हृदयका और भी आधिक आलम्ब मिल गया। उन्होंने स्थिरचित्त होकर संसारकी परिस्थितिका विचार किया ओर बनमें जाकर दीक्षा लेनेका दृढ निश्चय कर लिया । उसी समय पीताम्बर पहिने हुए लौकान्ति के देवोंने आकर उनकी स्तुति की और दीक्षा धारण करने के विचारों का समर्थन किया । अपना कार्य पूराकर उनकी स्तुति की और दीक्षा धारण करने के विचारों का समर्थन किया। अपना कार्य पूराकर लौकान्तिक देव अपने स्थानोपर वापिस चले गये। उनके जाते ही असंख्य देव-राशी जय जय घोषणा करती हुई आकाश मार्ग से कुण्डलपुर आई। वहां उन्होंने भगवान महावीर का दीक्षाभिषेक किया तथा अनेक सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहिनाये। भगवान् भी देवनिर्मित चन्द्रप्रभा पालकीकर सवार होकर षण्डवनमें गये ओर वहां अगहन वदी दशमी के दिन हस्त नक्षत्र में संध्या के समय नम: सिध्देभ्य: कहकर वस्त्राभूषण उतारकर फें क दिये । पंच मुष्टि योंसे केश उखाड डाले। इस तरह बाह्य ओर आभ्यन्तर परिग्रह का त्यागकर आत्मध्यान में लीन हो गये । विशुध्दि के बढनेसे उन्हें उसी समय मन:पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया। दीक्षा कल्याण का उत्सव समाप्तकर देव लोग अपने अपने स्थानोंपर चले गये।

पारणा के दिन भगवान् महावीरने आहार के लिये कुलग्राम नामक नगरीमें प्रवेश किया। वहां उन्हें कुल-भूपाल ने भक्तिपूर्वक आहार दिया। पात्रदान से प्रभावित होकर देवोंने कुल -भूपाल के घरपर पंचाश्चर्य प्रकट किये। वहांसे लौट कर मुनिराज महावीर वनमं पहुंचे और आत्मध्यान में लीन हो गये । दीक्षा के बाद उन्होंने मौनव्रत ले लिया था। इसलिये बिना किसीसे कुछ कहे हुए ही वे आर्य देशोंमें विहार करते थे ।

एक दिन वे विहार करते हुए भगवान महावीर उज्जयिनी के अतिमुक्तक नाम के श्मशान में पहुंचे और रातमें योग धारणकर वहीं पर विराजमान हो गये। उन्हें देखकर महादेव रुद्रने अपनी दुष्ट ता से उनके धैर्यकी परीक्षा करनी चाही । उसने बैताल विद्या के प्रभाव से रात्रीके सघन अन्धकारको और भी सघन बना दिया अनेक भयानक रुप बनाकर नाचने लगा। कठोर शब्द, अट्टाहास और विकराल दृष्टि से डराने लगा। तदनन्तर सर्प, सिंह हाथी, अग्नि ओर वायु आदि के साथ भीलोंकी सेना बनाकर आया। इस तरह उसने अपनी विद्याके प्रभाव से खूब उपसर्ग किया। पर भगवान् महावीर का चित्त आत्मध्यानसे थोडा भी विचलित नहीं हुआ। उनके अनुपम धैर्यको देखकर महादेव ने असली रुपमें प्रकट होकर उनकी खूब प्रशंसा की-स्तुति की और क्षमा याचना कर अपने स्थानपर चला गया।

वैशाली के राजा चेट ककी छोटी पुत्री चन्दना बनमे खेल रही थी। उसे देखकर कोई विद्याधर काम बाग से पीडित हो गया। इसलिये वह उसे उठाकर आकाश में लेकर उड गया। पर ज्योंही उस विद्याधर की दृष्टि अपनी निजकी स्त्रीपर पडी त्योंही वह उससे डरकर चन्दना को एक महा अट वी में छोड आया। वहां पर किसी भीलने देखकर उसे धन पानेकी इच्छासे क ौशाम्बी नगरीके वृषभदत्त सेठके पास भेज दिया। सेठकी स्त्रीका नाम समुद्रा था वह बडी दुष्ट ा थी, उसने सोचा कि कभी सेठजी इस चन्दनाकी रुप-राशिपर न्यौछावर होकर मुझे अपमानित न करने लगे। ऐसा सोचकर वह चन्दनाकी रुप-राशिपर न्यौछावर होकर मुझे अपमानित न करने लगे। ऐसा सोचकर वह चन्दनाको खूब कष्ट देने लगी। सेठानीके घरपर प्रतिदिन चन्दनाको मिट्टीके वर्तनमं कांजीसे मिला हुआ पुराने कोदोंका भात ही खानेको मिलता था। इतने पर भी हमेशा सांकलमें बंधी रहती थी। इन सब बातोंसे उसका सौन्दर्य प्राय: नष्ट -सा हो गया था।

एक दिन विहार करते हुए भगवान् आहार लेनेके लिये कौशाम्बी नगरीमें पहुंचे। उनका आगमन सुनकर चन्दनाकी इच्छा हुई कि मै भगवान महावीरके लिये आहार दूं पर उसके पास रक्खा ही क्या था ? उसे जो भी मिलता था वह दूसरेकी कृपासे और सडा हुआ तिसपर वह सांकलमें बंधी हुई थी। चन्दनाको अपनी परन्त्रातका विचार कर बहुत ही दु:ख हुआ। पर भाव भक्ति भी कोई चीज है । ज्योंही भगवान् महावीर उसके द्वार परसे निकले त्योंही उसकी सांकल अपने आप टूट गई । उसका शरीर पहलेके समान सुन्दर हो गया। यह देखकर उसने प्रसन्नतासे पडगाह कर भगवान् महावीरके लिये आहार दिया । दवोंने चन्दनाकी

भक्तिसे प्रसन्न होकर उसके घरपर रत्नोंकी वर्षा की । तबसे चन्दनाका महात्म्य सब ओर फैल गया। पता लगनेपर चेट क राजा पुत्रीको लिवानेके लिये आया पर वह संसारकी दु:खमय अवस्थासे खूब परिचित हो गई थी इसलिये उसने पिताके साथ जानेसे इनकार कर दिया और किसी आर्यिकाके पास दीक्षा ले ली । अबतक छद्मस्थ अवस्थामें विहार करते हुए भगवान्के बारह वर्ष बीत गये थे। एक दिन वे जृम्भिका गांवके समीप ऋजुकला नदीके किनारे मनोहर नामके वनमें सागोन वृक्षमे नीचे पत्थरकी शिलापर विराजमान थे। वहींपर उन्हें शुक्ल ध्यानके प्रतापसे घातिया कर्मोंका क्षय होकर वैशाख शुक्ल दशमीके दिन हस्त नक्षत्रमें शमके समय केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। देवोंने आकर ज्ञान-कल्याणकका उत्सव किया। इन्द्रकी आज्ञा पाकर धनपति कुबेरने समवशरण (धर्मसभा) रचना की। भगवान् महावीर उसके मध्य भागमें विराजमान हुए। धीर-धीरे समवशरणकी बारंह सभाएं भर गई। समवशरण भूमिका सब प्रबन्ध देव लोग अपने हाथमें लिये हुए थे इसलिये वहां किसी प्रकारका कोलाहल नहीं होता था। सभी लोग सतृष्ण लोचनोंसे भगवानकी ओर देख रहे थे ओर कानोंसे उनके दिव्य उपदेशकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पर भगवान् महावीर चुपचाप सिंहासनपर अन्तरीक्ष विराजमान थे। उनके मुखसे एक भी शब्द नहीं निकलता था। केवलज्ञान होनेपर भी छयासठ दिनतक उनकी दिव्य ध्वनि नहीं खिरी। जब इन्द्रने अवधिज्ञानसे इसका कारण जानना चाहा तब उसे मालूम हुआ कि अभी सभा भूमिमें क ोई गणधर नहीं है आरे बिना गणधरके तीर्थकरकी वाणी नही खिरती । इन्द्रने अवधिज्ञानसे यह भी जान लिया कि गौतम ग्राममे जो इन्द्रभूति नामका ब्राह्मण हौ वही इनका प्रथम गणधार होगा । ऐसा जानकर इन्द्र, इन्द्रभूतिको लानेके लिए गौतम गया। इन्द्रभूति वेद वेदांगोको जानने वाला प्रकाण्ड विद्वान था । उसे अपनी विद्याका भारी अभिमान था। उसके पांचसौ शिष्य थे। जब इन्द्र उसके पास पहुंचा तब वह अपने शिष्योको वेद वेदांगौका पाठ पढा रहा था। इन्द्र भी एक शिष्यके रुपमें उसके पास पहुंचा और नमस्कार कर जिज्ञासु भावसे बैठे गया। इन्द्रभूतिने नये शिष्य की ओर गम्भीर दृष्टि से देखकर कहा कि तुम कहांसे आये हो? किसके शिष्य हो ? उसके वचन सुनकर शिष्य वेषधारी इन्द्रने कहा कि मै सर्वज्ञ भगवान् महावीरका शिष्य हूं। इन्द्रभूतिने महावीरके साथ सर्वज्ञ और भगवान विशेषण सुनकर तिणकते हुए कहा-च ओ सर्वज्ञ के शिष्य ! तुम्हारे गुरु यदि सर्वज्ञ है तो अभीतक कहां छिपे रहे ? क्या मुझसे शास्त्रार्थ किये बिना ही वे सर्वज्ञ कहलाने लगे है ?छ इन्द्रने कुछ भौंह टेढी करते हुए कहा - तो क्या आप अनसे शास्त्रार्थ

करने के लिये समर्थ है ? इन्द्रभूतिने कहा- घ्कहाँ, अवश्य तब इन्द्रने कहा-अच्छा, पहले उनके शिष्य मुझसे ही शास्त्रार्थ कर देखिये-फिर उनसे करियेगाङ क। मै पूछता हूं.....

घ घत्रौकाल्यं द्रव्यष्ट्कं नव पद सहितं.....आदि ङ ।

कहिये महाराज इस श्लोक का क्या अर्थ है? जब इन्द्रभूतियो द्रव्यष्टकं घ नवपद सहितं ङ लेश्या आदि शब्दोंका अर्थ प्रतिभासित नहीं हुआ तब वह क डक कर बोला-चल, तुझसे क्या शास्त्रार्थ करुं, तेरे गुरु से ही शास्त्रार्थ क रुंगाङ ऐसा कहकर मय पांच हसंता हुआ आगे होकर मार्ग बतलाने लगा । ज्योंही इन्द्रभूति समवसरण के पास आया और उसकी दृष्टी मानस्तम्भपर पडी त्योंही उसका समस्त अभिमान दूर हो गया।वह विनित भावसे समवसरण के भीतर गया। वहां भगवान् के दिव्य ऐश्वर्य को देखकर उनके सामने उसने अपने आपको बहुत ही हल्का अनुभव किया। जब इन्द्रभूति भगवान्को नमस्कार कर मनुष्योंके कोठे में बैठ गया तब इन्द्रने उससे कहा-अब आप जो पूछना चाहते हों वह पूछिये। जब इन्द्रभूतिने भगवान्से जीवको स्वरुप पूछा तो तब उन्होंने सप्तभंगीमें जीव-तत्वका विशद व्याख्यान किया। उनके दिव्य उपदेशसे गद्गद् हृदय होकर इन्द्रभूतिने कहा-भगवान ! इस दास को भी अपने चरणोंमें स्थान दीजियें ऐसा कहकर उसने वहीं पर जिनदीक्षा धारण कर ली उसके पांच सौ शिष्योंने भी जैनधर्म स्वीकार कर यथाशक्ति व्रतविधान ग्रहण किये। दीक्ष लेने के कुछ समय बाद ही इन्द्रभूतिको सात ऋध्दियां और मन:पर्याय ज्ञान प्राप्त हो गया था। यही भगवान् वर्ध्दमान का प्रथम गणधर हुआ था। गौतम गांवमें रहने के कारण इन्द्रभूति काही दूसरा नाम गौतम था। भगवान अर्द्धमागधी भाषा में पादार्थो का उपदेश करते थे और गौतम इन्द्रभूति गणधरी उसे ग्रंथ रुपसे-अंग पूर्व रुपसे संकलित करते जाते थे। कालक्रम से भगवान महावीर के गौतम के सिवाय वायुभूति, अग्निभूति, सुधर्म, मौर्य, मौन्द्रय, पुत्र, मैत्रय अकम्पन, अन्धवेल ओर प्रभास ये दश गणधर और थे। इनके सिवाय इनके समवसरण में तीन सौ ग्यारह। द्वादशांग के वेत्ता थे, नौ हजार नौ सौ शिक्षक थे, तेरह सौ अवधिज्ञानी थे, सात सौ वादी थे। इस तरह सब मिलाकर चौदह हजार मुनिराज थे । चन्दना आदि छत्तीस हजार अर्यिकायें थी, एक लाख श्रावक थे, तीन लाख श्राविकायें थी, असंख्यात देव-देवियां और संख्यात तिर्थच थे। इन सबसे वेष्टित होकर उन्होंने नय प्रमाण और निक्षेपोंसे वस्तुका स्वरुप बतलाया। इसके अनन्तर कई स्थानोंमें बिहार कर धर्मामृतकी वर्षा की।

इन्ही के समयमें कपिलवस्तु के राजा शुध्दोधन के गौतम बुध्द नामका पुत्र था जो अपने विशाल ऐश्वर्य को छोडकर साधु बन गया था। साधु गौतम बुध्दने अपनी तपस्या से महात्मा पद प्राप्त किया था। महात्मा बुध्द जगह-जगह घुमकर बौध्दधर्मका प्रचार किया करते थे। बुध्द के अनुयायी बौध्द और महावीर क अनुयासी जैन कहलाते थे। यद्यपि उस समय जैन और बौध्द ये दोनों सम्प्रदाय वैदिक विधान बलि, हिंसा आदिका विरोध करनेमें पूरी-पूरी शक्ति लगाते थे तथापि उन दोनोंमें बहुत मतभेद था। बौध्द और जैनियो कि दार्शनिक तथा आचार विषयक मान्यताओंमें बहुत अन्तर था। जो कुछ भी हो: पर यह नि:सन्देह कहा जा सकता है कि वे दोनों उस समय के महापुरुष थे। दोनों का व्यक्तित्व खूब बढा चढा था। जब तक महावीर की छद्मस्थ अवस्था रही तब तक प्राय: बुध्दके उपदेशों का अधिक प्रचार रहा। पर जब भगवान् महाविर केवल ज्ञानी होकर दिव्य ध्वनिके द्वारा उपदेश करने लगे थे तब बुध्द माहत्म्य बहुत कुछ कम हो गया था। राजा श्रेणिक जैसे कट्टर बौध्द भी महावरीके अनुयायी बन गये थे अर्थात् जैनी हो गये थे। एक जगह गौतम बुध्दने अपने शिष्योंके सामने भगवान महावीर को सर्वज्ञ स्वीकार किया था और बचनोंमें अपनी आस्था प्रकट की थी।

पूर्णज्ञानी योगी भगवान् महावीर ने पहले तो वैदिक बलिदान तथा अन्य कुरीतियों को बन्द करवाया था। और फिर अपने मार्मिक धार्मिक उपदेशोंसे, बौध्द, नैयायिक, सांख्य आदि मत मतान्तरों की मान्यताओंका खण्डन कर स्याद्वाद रुपसे जैनधर्मकी मान्यताओंका प्रकाश किया था।

एक दिन भगवान विहार करते हुए राजगृह नगरमें आये। और वहांके विपुलाचल पर्वतपर समवसरणसहित विराजमान हो गये उस समय राजगृह नगरमें राजा श्रेणिक का राज्य था । पहिले कारणवश श्रेणिक राजाने बौध्दधर्म स्वीकार कर लिया था। परन्तु चेलिनी रानीके बहुत कुछ प्रयत्न करने पर उन्होंने बौध्दधर्मको छोडकर पुन: जैनधर्म धारण कर लिया था। जब उन्हे विपुलाचल पर महावीर जिनेन्द्र के आगमन का समाचार मिला तब वह समस्त परिवार के साथ उनकी वन्दना के लिये गया और उन्हे नमस्कार कर मनुष्योंके कोठेमें बैठ गया । भगवान महावीरने सुन्दर सरस शब्दोंमें पदार्थोंका विवेचन किया जिसे सुनकर राजा श्रेणिकको क्षायिक सम्यगदर्शन प्राप्त हो गया। क्षायिक सम्यग्दर्शन पाकर उसे बडी ही प्रसन्नता हुई । राजा श्रेणिक को उनके प्रति इतनी गाढ श्रध्दा हो गई थी कि वह अपने पास प्राय: नित्य प्रति जाकर तत्वोंका उपदेश सुना करता था।

श्रेणिक को आसन्न भव्य समझकर गौतम गणधर वगैरह भी उसे खूब उपदेश दिया करते थे। प्रथमानुयोग का उपदेश तो प्राय: श्रेणिकके प्रश्नोंके अनुसार किया गया था। श्रेणिकने उन्हीके पासमें दर्शन विशुध्दी आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवनकर तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध भी कर लिया था। जिससे वह आगामी उत्सर्पिणी में पद्मनाथी नाम के तीर्थकर होंगे।

भगवान महावीरका विहार, बिहार प्रान्त में बहुत अधिक हुआ है। राजगृह के विपुलाचलपर तो उनके कई वार अनेक कथानक मिलते है। इस तरह समस्त भारतवर्ष में जैनधर्म का प्रचार करते-करते जब उनकी आयु बहुत थोडी रह गई तब वे पावापुर में आये और वहां योग निरोधकर आत्मध्यान में लीन हो विराजमान हो गये। वहींपर उन्होंने सूक्ष्म-क्रिया-प्रतिपाति और व्युपरत-क्रिया-निवृत्ती नामक शुक्ल ध्यान के द्वारा अघातियां कर्मोका नाशकर कार्तिक वदी अमावस्या के दिन प्रात:काल के समय बहत्तर वर्ष की अवस्थ में मोक्ष लाभ किया। देवोंने आकर निर्वाण क्षेत्र की पूजा की और उनके गुणों की स्तुति की।

भगवान् महावीर जब मोक्ष गये थे तब चतुर्थकाल के ३ वर्ष ८ माह १५ दिन बाकी रह गये थे। उन्हेंह उत्पन्न हुए आज २५३६ वर्ष और मोक्ष प्राप्त किये २४६४ वर्ष व्यतीत हो गये है। ये ब्रह्मचारी हुए। न इन्होंने विवाह किया और न राज्य ही । किन्तु कुमार अवस्थामें दीक्षा धारण कर ली थी। जिन्होंने इनकी आयु ७१ वर्ष ३ माह २५ दिनकी मानी है उन्होने उसका विभाग इस तरह लिखा है ।

गर्भकाल ६ माह ८ कुमारकाल २८ वर्ष १२ दिन,छदमस्थकाल १२ वर्ष ५ माह १५ दिन, केवलिकाल २६ वर्ष ५ माह २० दिन, कुल ७१ वर्ष ३ माह २५ दिन हुए।

मुक्त होनेपर चतुर्थकाल के बाकी रहे ३ वर्ष ८ माह २५ दिन।

इस तरह इस मतमें चतुर्थकाल के ७५ वर्ष १० दिन बाकी रहनेपर भगवान् महावीर ने गर्भ में प्रवेश किया था और जिन्होंने ७२ वर्ष की आयु मानी है उन्होंने कहा है कि चतुर्थकालके ७५ वर्ष ८ माह १५ दिन बाकी रहनेपर महावीर ने त्रिशला के गर्भ में किया था।

इनके बाद गौतम, सुधर्म ओर जम्बू थे तीन केवली और हुए है । आज जैन धर्मकी आम्नाय उन्हींके सार-गर्भित उपदेशोंसे चल रही है। वर्ध्दमान, महावीर, वीर, अतिवीर और सन्मति ये पांच नाम प्रसिध्द है ।

** * * समाप्त * * **

।। चतुर्विंशति तीर्थंकरेभ्यो नमः।।

श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुति

लेखक- पज्ञाश्रमण देवनन्दि मुनि

दोहा

आदि विभु आदि युगे, आदि ब्रह्म मुनि नाथ।
चरण शरण मे मैं खडा, दीजे मेरा साथ। १।
इन्द्रिय विषय कषाय चउ, जीत चुके जिनराज ।
अजित नाथ मम जीत हो। सफल होय सब काज। २।
संभव जिन भंजन किये, कर्म वसु समुदाय।
कर्म रिपु मम दूर हो, भक्ति करुँ तव पाय। ३।
आनन्द मंगल तव किया, अभिनन्दन भगवान।
गुप्ति त्रय को साधकर, पाऊँ केवल ज्ञान।४।
सुमति सुमति करदो विभु, दूर ह्वें बुरी रीत।
कुमति तज सुमति जिन भये, सर्व भूत मम मीत।५।
सूर्य उद्य प्रभु कमल खिले, पदम प्रभु सिध्दात्म।
ह्रदय पद्म मम खिल उठे, आत्म बने परमात्म। ६।
पार्श्व तज सुपार्श्व बने, बहु गुण कीने पास।
औगुण मेरे मत लखो, मोहि रखो तव पास।७।
चन्द्र प्रभु तुम चन्द्र वत, चन्द्र वदन तव गात।
ललित कूट से सिध्द भये, सुनलो मेरी बात।८।
पुष्प दन्त प्रभु पुष्प सम, महक रहे चहुँ ओर।
सुविधि सब बिधी करो, देखो मेरी ओर।९।
पाप तजे शीतल भये, शीतल नाथ भगवान्।
शीतल हो प्रभु शीतल करो, प्रगटे आतम ज्ञान।१०।
अश्रेयस को छोडकर, श्रेयस कीना काम।
जगहितकारी श्रेयकर, श्रेयांस नाथ जिन नाम।११।
वसु द्रव्य लिये करपात में, पूज रहो वसुपुज्य।
कर्म वसु मम दूर हो, भगवन वासुपूज्य।१२।
कल्मषता को धो लिये, निर्मल करके भाव।

विमल नाथ के चर्चते, दूर ह्वें परभाव।१३।
अनन्त अनन्त गुण को धरें, अनन्त चतुष्ट याधार।
अनन्त नाथ मम अन्तकर, करदो भव से पार।१४।
धर्मनाथ प्रभु सिध्द हो, धर्म शुक्ल युत ध्यान।
दश धर्मों को साधकर, होऊँ आप समान।१५।
सकल शील संयम धरा, अन्त किये तुम पाप।
शान्ति नाथ को नित नमूँ, शान्त करो सन्ताप।१६।
कुन्थु कुं थ्वादिक तजे, जीव दया गुण सार।
कुन्थुनाथ मम दया कर, शीघ्र करो उध्दार।१७।
स्याद्वाद युत वचन तव, हरते जग अन्धकार।
अहर नारि जिन को लखैं, इन्द्र आंख हजार।१८।
शल्ल दल्ल हो मल्लि प्रभु, गारव रहित विकार।
त्रिभुवन ईश मनीष हो मम होवे श्रेष्ठ विचार।१९।
अव्रत तज व्रति हुये, मुनिसुव्रत मुनि नाथ।
शीघ्र तजूँ भवचक्र को, हो जाऊँ तप तव साथ।२०।
कनक जनक सब कुछ तजा, मिथीलापुरी नरेश।
नय विनय मेरी सुनो, नमिनाथ निर्दोष।
राज राज मति को तजा, दूर करो मम दोष।२२।
बालब्रह्म चारी प्रभु, करते सिध्दा वास।
पार्श्व प्रभु तुम पास में, होवे मरो वास । २३।
वर्धमान के चरण बढे, मोक्ष हेतु धर्मार्थ।
मम मति सन्मति हो विभु, सकल करो सिध्दार्थ।२४।
तीर्थकर चौबीस का, निशदिन करिये पाठ।
निर्मलबुध्दी यशस्वती, नशत कर्म सब आठ।२५।
प्रज्ञा मुझमें है नहीं, नहीं शास्त्र का ज्ञान।
श्रमण च्देवनन्दि छशोध पढें धीमान।२६।